नईदुनिया

संपादकीय

भोपाल का हमीदिया शर्मसार स्ट्रेचर पर टंगी स्वास्थ्य व्यवस्था!

दो किलोमीटर दूर मंत्रालय, दो गज दूर मौत। यहां दिए तले अंधेरा नहीं, अंधेरगर्दी है। मध्यप्रदेश के स्वास्थ्य विभाग के मुंह पर यह करारा तमाचा है। राजधानी भोपाल के हमीदिया अस्पताल में थैलेसीमिया से जूझ रहे मासूम बच्चों को बिस्तर नसीब नहीं हो रहे। उन्हें स्ट्रेचर पर खून चढ़ाया जा रहा है। वह भी एक-दो घंटे नहीं, बल्कि घंटों तक गंदगी के बीच और संक्रमण के साये में। जब राजधानी के सबसे बड़े और वीआईपी अस्पताल का यह हाल है, तो सोचिए टीकमगढ़, बड़वानी और मंडला के जिला अस्पतालों में मरीजों की क्या स्थिति होगी?

हमीदिया अस्पताल कोई कस्बे की डिस्पेंसरी नहीं है। यह प्रदेश का सबसे बड़ा रेफरल सेंटर है, जहां पूरे मध्यप्रदेश से मरीज आखिरी उम्मीद लेकर आते हैं। थैलेसीमिया जैसे गंभीर रोग में बच्चे के शरीर में खून बनता ही नहीं। हर 15 दिन में खून चढ़ाना जीवन और मौत का सवाल होता है। ऐसे बच्चों को संक्रमणमुक्त और साफ-सुथरे वातावरण की जरूरत होती है, लेकिन यहां उन्हें वार्ड में बिस्तर तक नहीं मिल रहा। परिजन शिकायत कर रहे हैं, चीख रहे हैं, लेकिन प्रबंधन के कान पर जूं तक नहीं रेंग रही। कुछ मरीजों को तो स्ट्रेचर भी नसीब नहीं, उन्हें वार्ड के फर्श पर लिटा दिया गया। यह इलाज है या यातना? सबसे बड़ा सवाल यह है कि स्वास्थ्य मंत्री जी कहां हैं? अधिकारी कहां हैं?

इतने मेडिकल कॉलेज खोल दिए, इतने बिस्तर बढ़ा दिए, अस्पतालों का कायाकल्प कर दिया। अरे, किस कायाकल्प की बात करते हैं आप? भोपाल में मंत्रालय से हमीदिया की दूरी महज दो किलोमीटर है। स्वास्थ्य संचालनालय की खिड़की से हमीदिया की इमारत दिखाई देती है। आपकी चमचमाती गाड़ियां रोज उसी गेट से निकलती हैं, जहां एक मासूम स्ट्रेचर पर खून चढ़ने का इंतजार कर रहा है। आपको वह दिखाई नहीं देता, क्योंकि आप स्वास्थ्य व्यवस्था को फाइलों में देखते हैं, जमीन पर नहीं।

नए मेडिकल कॉलेज खोलना अच्छी बात है, लेकिन पुराने अस्पतालों का क्या? हमीदिया में डॉक्टर हैं तो नर्स नहीं, नर्स हैं तो वार्ड बॉय नहीं। बिस्तर हैं तो चादर नहीं और चादर है तो सफाई नहीं। पूरी व्यवस्था ही सड़ चुकी है। आप इमारत बना देते हैं, उद्घाटन कर देते हैं, फोटो खिंचवा लेते हैं, लेकिन उस इमारत में जान कौन डालेगा? स्टाफ कहां है? दवाइयां कहां हैं?

इस अव्यवस्था का सबसे बड़ा शिकार गरीब है। अमीर आदमी का बच्चा बीमार होगा तो वह दस हजार रुपये देकर निजी अस्पताल में बिस्तर और एसी वार्ड ले लेगा, लेकिन गरीब कहां जाएगा? वह सुबह चार बजे उठकर शहडोल या छतरपुर से बस पकड़कर भोपाल आता है। पूरा दिन कतार में खड़ा रहता है और शाम को उसके बच्चे को स्ट्रेचर पर खून चढ़ाकर कह दिया जाता है, हो गया, अब जाइए। क्या यही है आपका सुशासन? क्या इसी दिन के लिए जनता टैक्स देती है? हमीदिया की यह तस्वीर आपके सारे दावों की कलई खोलने के लिए काफी है। यह बता रही है कि आपका सिस्टम सिर्फ कागजों पर दौड़ रहा है, जमीन पर तो वह स्ट्रेचर पर पड़ा है। अब भाषण बंद कीजिए, मंत्री जी। अगर हिम्मत है तो बिना प्रोटोकॉल और बिना माला पहने एक बार अचानक हमीदिया के थैलेसीमिया वार्ड में जाइए। वहां उन माताओं से पूछिए, जिनके बच्चे स्ट्रेचर पर लेटे हैं। उनकी आंखों में देखिए, आपके सारे आंकड़े झूठे लगने लगेंगे। हमीदिया में थैलेसीमिया से पीड़ित बच्चों के लिए अलग संक्रमणमुक्त वार्ड बनाइए। पूरे प्रदेश के जिला अस्पतालों का कागजों पर नहीं, जमीन पर उतरकर वास्तविकता परीक्षण कराइए। अस्पताल में बिस्तर न मिलना सिर्फ अव्यवस्था नहीं, आपराधिक लापरवाही है।

आजकल

उड़ता पंजाब अब डूबता पंजाब

पंजाब की धरती को कभी शौर्य और समृद्धि की धरती कहा जाता था। यहां का युवा सेना में जाता था और खेतों में सोना उगाता था, लेकिन आज उसी पंजाब को नशे की राजधानी कहा जाने लगा है। यह चिंता और चिंतन, दोनों का विषय है। नशा अब सिर्फ चिट्टा और हेरोइन तक सीमित नहीं है, बल्कि शराब, अफीम, भुक्की और सिंथेटिक ड्रग्स तक फैल चुका है। युवा बर्बाद हो रहा है, परिवार बिखर रहे हैं और सपने टूट रहे हैं।

नशे के तीन बड़े कारण हैं। पहला, बेरोजगारी। पंजाब में खेती घाटे का सौदा बनती जा रही है। छोटा किसान कर्ज में है, उद्योगों के अवसर सीमित हैं और सरकारी नौकरियां पर्याप्त नहीं हैं। युवाओं के पास डिग्री है, लेकिन काम नहीं। खालीपन और हताशा उन्हें नशे की ओर धकेल रहे हैं। दूसरा कारण सीमा पार से सक्रिय नशे का नेटवर्क है। पाकिस्तान की तरफ से ड्रोन के जरिए हेरोइन और अन्य मादक पदार्थों की खेप भेजी जा रही है, जो गांव-गांव तक पहुंच रही है। तीसरा कारण सामाजिक चुप्पी है। बदनामी के डर से परिवार नशे की लत छिपाते हैं और बीमारी बढ़ती जाती है।

नशे का असर सिर्फ शरीर पर नहीं, अर्थव्यवस्था और समाज पर भी पड़ता है। युवा काम करने की क्षमता खोता है और अपराध की ओर बढ़ता है। परिवार की कमाई नशे में खर्च होती है, जमीन बिकती है और मां के गहने तक गिरवी रखने पड़ते हैं। पंजाब, जो देश को अन्न देता था, आज अपने युवाओं को खो रहा है। यह पूरे देश की चिंता है। इससे निपटने के लिए बड़े तस्करों पर कठोर कार्रवाई, ड्रोन नेटवर्क पर तकनीकी निगरानी और युवाओं के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाने होंगे। खेल मैदान, उद्योग और कौशल केंद्र खोलने होंगे। नशामुक्ति केंद्रों को जेल नहीं, अस्पताल जैसा वातावरण देना होगा। सबसे महत्वपूर्ण भूमिका समाज की है। गुरुद्वारों, स्कूलों और परिवारों को आगे आना होगा। हर गांव में नशे के खिलाफ निगरानी समिति बने। माताएं बेटों से खुलकर बात करें और पिता उनके दोस्त बनें। नशे को ग्लैमर नहीं, सामाजिक बुराई के रूप में स्थापित करना होगा।

पंजाब को फिर हंसता-खेलता बनाना है तो नशे की जड़ों पर प्रहार करना होगा। युवा पंजाब की ताकत है, कमजोरी नहीं। यह लड़ाई सरकार और पुलिस अकेले नहीं जीत सकती। सबको मिलकर लड़ना होगा। पंजाब को उड़ता नहीं, दौड़ता पंजाब बनाना है, खेतों में, सेना में और तरक्की की राह पर। तभी पंजाब फिर सोने की धरती कहलाएगा।

राम बिना सीता अधूरी, भारत बिना नेपाल अधूरा

अयोध्या से जनकपुर की ट्रेन सिर्फ पटरी नहीं, दो दिलों की धड़कन है



नेपाल के प्रधानमंत्री की दिल्ली यात्रा पर बहुत कुछ लिखा गया। समझौतों की सूची छपी, सहायता राशि के आंकड़े छपे, लेकिन इस यात्रा का सबसे बड़ा समझौता कागज पर नहीं, दिल पर लिखा गया है। वह समझौता है भावनात्मक वापसी का। नेपाल में जब हिंसा हुई, जब राजनीतिक उथल-पुथल हुई, तब आम नेपाली ने किसे याद किया? भारत को। क्योंकि मुसीबत में आदमी पड़ोसी को नहीं, अपने भाई को याद करता है और भारत-नेपाल का रिश्ता पड़ोसी का नहीं, भाई का है। बड़ा भाई नहीं, सगा भाई। हमारे यहां कहावत है, रोटी-बेटी का रिश्ता। यह रिश्ता भारत और नेपाल से ज्यादा दुनिया में कहीं नहीं है।

सोचिए, जनकपुर की एक बेटी की शादी अयोध्या के एक लड़के से होती है। शादी में पंडित मंत्र पढ़ता है, सीता-राम का नाम लेता है। क्या उस समय पंडित को वीजा चाहिए होता है? क्या उस बेटी को पासपोर्ट दिखाना पड़ता है? नहीं, क्योंकि यह रिश्ता 1947 में नहीं बना। यह रिश्ता तब बना था, जब राम जनकपुर गए थे और सीता को ब्याहकर अयोध्या लाए थे। तब से हर भारतीय दूल्हा राम है और हर नेपाली दुल्हन सीता। इस रिश्ते को आप चीन की दीवार से कैसे रोक सकते हैं?

पिछले कुछ वर्षों में राजनीति ने इस निजी रिश्ते में जहर घोलने की कोशिश की। नेपाल के कुछ नेताओं ने कहा कि भारत दादागिरी करता है। युवाओं के मन में यह बात भर दी गई कि भारत ने नाकाबंदी कर दी। लेकिन सच पूछिए तो वह नाकाबंदी भारत ने नहीं, नफरत ने की थी। नफरत, जो बीजिंग से आई थी। चीन ने पैसे दिए, सड़क का वादा किया, बंदरगाह का सपना दिखाया, लेकिन क्या चीन कभी जनकपुर की एक बेटी को अयोध्या की बहू के रूप में अपना सकता है? क्या चीन कभी रामनवमी पर अयोध्या से जनकपुर तक पैदल जाने वाले श्रद्धालुओं के पैरों के छाले समझ सकता है? नहीं, क्योंकि चीन के पास पैसा है, परंपरा नहीं; सड़क है, संस्कार नहीं।

इसीलिए अयोध्या से जनकपुर तक चलने वाली ट्रेन की बात सिर्फ एक रेल परियोजना नहीं है, यह एक भावनात्मक सर्जरी है। एक बूढ़ी मां अयोध्या में रहती है। उसकी बेटी की शादी बीस साल पहले जनकपुर में हुई थी। वह अपनी बेटी से मिलने के लिए पहले बसें बदलती थी, सीमा पर घंटों रुकती थी और पुलिस के सवालों का जवाब देती थी। अब वही मां अयोध्या स्टेशन पर बैठेगी और ट्रेन में रामचरितमानस का पाठ सुनते हुए जनकपुर पहुंच जाएगी। प्लेटफॉर्म पर उसकी बेटी हाथ में फूलों की माला लिए खड़ी होगी। वह दृश्य देखकर किसकी आंखें नहीं भर आएंगी? क्या इस दृश्य की कीमत विश्व बैंक का कोई ऋण चुका सकता है?

यह ट्रेन धार्मिक रिश्तों के लिए तो वरदान है ही। हमारे शास्त्रों में रामेश्वरम से लेकर पशुपतिनाथ तक एक ही आध्यात्मिक चेतना का भाव मिलता है। अयोध्या में रामलला की प्राण प्रतिष्ठा के बाद हर नेपाली का सपना है कि वह एक बार अयोध्या आए। उसी तरह हर भारतीय का सपना है कि वह जनकपुर के जानकी मंदिर में माथा टेके। अभी तक यह यात्रा कठिन थी, ट्रेन इस कठिनाई को आसान बनाएगी। यह तीर्थयात्रा ही नहीं, प्रेमयात्रा होगी। इसमें एसी बोगियां ही नहीं, आस्था के डिब्बे भी होंगे।

जब यह ट्रेन चलेगी तो दो चीजें होंगी। पहली, चीन की ओर से बढ़ाई गई नफरत की दीवार कमजोर होगी, क्योंकि जब लोग मिलेंगे तो बात करेंगे और जब बात करेंगे तो गलतफहमियां दूर होंगी। उन्हें पता चलेगा कि भारत ने नेपाल के हर सुख-दुख में साथ दिया है। दूसरी, हमारी आने वाली पीढ़ी को पता चलेगा कि हमारा इतिहास सिर्फ दिल्ली या काठमांडू की संसद में नहीं लिखा गया। हमारा इतिहास जनकपुर के धनुष यज्ञ और अयोध्या के रामविवाह में भी लिखा गया है। नेपाल के नए प्रधानमंत्री शाह ने दिल्ली आकर इसी इतिहास को दोहराया है। उन्होंने समझ लिया है कि दिल्ली से दूरी बनाकर वह बीजिंग के करीब तो जा सकते हैं, लेकिन अपने लोगों के दिलों से दूर हो जाएंगे। और जो नेता अपने लोगों के दिलों से दूर हो जाए, वह ज्यादा दिन कुर्सी पर नहीं रहता।

इसलिए इस यात्रा का असर सिर्फ विदेश मंत्रालय की फाइलों में नहीं ढूंढना चाहिए। इसका असर जनकपुर के उस चाय वाले की दुकान पर ढूंढना चाहिए, जो अब हिंदी में पूछेगा, अयोध्या से आए हो भैया? उस अयोध्या के नाविक से पूछना चाहिए, जो कहेगा, जनकपुर वाले मेहमान आ रहे हैं, नाव सजाओ। रिश्तों में मिठास समझौतों से नहीं, मिलने से आती है और मिलने का सबसे सुंदर बहाना यह ट्रेन बनेगी।

यह ट्रेन जब अयोध्या से चलेगी और सरयू के किनारे से होते हुए बिहार के रास्ते जनकपुर पहुंचेगी तो उसकी सीटी की आवाज सिर्फ इंजन की नहीं होगी। वह आवाज होगी सीता की विदाई के समय जनकपुर में बजी शहनाई की और राम के अयोध्या लौटने पर बजे नगाड़ों की।

भारत और नेपाल को दुनिया को बताना होगा कि हम दो देश नहीं, एक परिवार हैं। परिवार में रूठना-मनाना चलता है, लेकिन रिश्ता कभी नहीं टूटता। अयोध्या-जनकपुर ट्रेन उसी रूठे परिवार को मनाने की सबसे मीठी कोशिश है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

मध्यप्रदेश में सरकारी संकट रिटायरमेंट तो आउटसोर्स पर भ्रम

ढाई लाख कर्मियों की नौकरी पर अफवाह का साया, मुख्यमंत्री को बताई हकीकत

प्रदेश के ढाई लाख से अधिक आउटसोर्स कर्मचारियों की नौकरी पर छाए संकट के बादल छंटते दिख रहे हैं। खाली पड़े नियमित पदों पर भर्ती हो सकती है, लेकिन आउटसोर्स कर्मचारियों की नौकरी छीनकर नहीं। राज्य कर्मचारी कल्याण समिति के अध्यक्ष रमेश शर्मा ने दावा किया कि वित्त विभाग के सर्कुलर में आउटसोर्स कर्मचारियों की सेवा समाप्ति को लेकर कोई जिक्र ही नहीं है। एक भ्रम के कारण यह स्थिति बनी थी, जिसे जल्द ही स्पष्ट कर दिया जाएगा। इसके बाद आउटसोर्स कर्मियों का संशय भी खत्म हो जाएगा।



वित्त विभाग के 22 दिसंबर 2025 के सर्कुलर के आधार पर योजना, आर्थिक एवं सांख्यिकी विभाग द्वारा 11 नवंबर 2026 को जारी आदेश के बाद प्रदेश में कार्यरत इन कर्मचारियों की नौकरी पर संकट छा गया था। योजना एवं सांख्यिकी विभाग ने सभी विभागों से 31 मार्च 2027 तक कार्रवाई करने को कहा था। कर्मचारी कल्याण समिति के अध्यक्ष शर्मा ने इन कर्मचारियों पर आए संकट को लेकर बीते दिनों मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव से मुलाकात की और उन्हें वित्त विभाग का सर्कुलर दिखाया। शर्मा का दावा है कि मुख्यमंत्री ने अधिकारियों को तत्काल भ्रम दूर करने के निर्देश दिए थे।

वित्त विभाग के 22 दिसंबर 2025 के सर्कुलर में पदों से जुड़े नियम जारी किए गए थे। इसमें अस्थायी और स्थायी पदों के बीच अंतर खत्म करने का प्रावधान था। कार्यभारित और आकस्मिकता स्थापना का भी जिक्र था। स्थायी कर्मचारियों के पदों को सांख्येत्तर घोषित करने से जुड़े प्रावधान भी इसमें शामिल थे। इसी के आधार पर योजना एवं सांख्यिकी विभाग के उप सचिव ने 11 नवंबर 2026 को पत्र जारी कर नियमित स्वीकृत पदों के विरुद्ध आउटसोर्स से ली जा रही सेवाओं को लेकर निर्देश दिए थे। विभागों से 31 मार्च 2027 तक जरूरी कार्रवाई पूरी करने को कहा गया था। अब असली सवाल यह है कि मध्यप्रदेश में सरकारी कामकाज चलेगा कैसे? अधिकांश विभागों में कर्मचारियों के सेवानिवृत्त होने के बाद रिक्त पदों पर भर्तियां नहीं हुई हैं। कलेक्टर दर, संविदा और दैनिक वेतन पर कर्मचारी रखने पर रोक लगी है। सरकार ने साफ कह दिया है कि नए कलेक्टर दर पर कर्मचारी नहीं रखे जाएंगे और संविदा नियुक्तियां भी बंद हैं। ऐसे में विकल्प क्या बचता है? आउटसोर्सिंग। इसी के माध्यम से आज प्रदेश के सभी विभागों में काम चल रहा है। तहसील से लेकर अस्पताल तक और नगर निगम से लेकर बिजली कंपनियों तक आउटसोर्स कर्मचारी ही फाइलें चला रहे हैं, मरीजों की देखभाल कर रहे हैं और बिजली सुधार रहे हैं। यदि आउटसोर्स कर्मचारियों को भी हटाने की बात आती है तो सरकार के सामने दोहरी चुनौती होगी। एक तरफ ढाई लाख परिवार बेरोजगार होंगे, दूसरी तरफ सरकारी दफ्तरों का कामकाज ठप हो सकता है। नियमित कर्मचारी पहले ही कम हैं। कई विभागों में तो 50 प्रतिशत पद खाली हैं। राजस्व विभाग में पटवारियों की कमी है, स्वास्थ्य विभाग में नर्स और वार्डबॉय नहीं हैं, जबकि शिक्षा विभाग में चपरासी तक आउटसोर्स से काम कर रहे हैं। ऐसे में यदि आउटसोर्स कर्मचारी हटे तो काम कौन करेगा? इस सवाल का जवाब अधिकारियों के पास भी नहीं है।

सरकार की मंशा क्या है? सरकार चाहती है कि नियमित पदों पर नियमित भर्ती हो। यह अच्छी बात है, लेकिन नियमित भर्ती में समय लगता है। व्यापमं या कर्मचारी चयन मंडल के माध्यम से भर्ती प्रक्रिया पूरी होने में दो से तीन साल लग जाते हैं। तब तक काम कौन संभालेगा? यदि सरकार चाहती है कि आउटसोर्स की जगह दैनिक वेतनभोगियों या संविदा कर्मचारियों को रखा जाए तो फिलहाल इसकी कोई योजना नजर नहीं आती। न कोई आदेश है, न भर्ती प्रक्रिया और न ही बजट। ऐसे में यह सिर्फ कागजी आदेश बनकर रह जाएगा। भ्रम का कारण भी समझना जरूरी है। वित्त विभाग का सर्कुलर अस्थायी और स्थायी पदों के लिए था। इसका आशय यह था कि जो पद वर्षों से अस्थायी रूप से चल रहे हैं, उन्हें स्थायी किया जाए या समाप्त किया जाए। लेकिन योजना एवं सांख्यिकी विभाग ने इसे आउटसोर्स से जोड़ दिया और नियमित पदों के विरुद्ध ली जा रही आउटसोर्स सेवाएं बंद करने के निर्देश दे दिए। इससे विभागों में हड़कंप मच गया। कर्मचारियों में डर फैल गया कि 31 मार्च तक सभी को नौकरी से निकाल दिया जाएगा।

समाधान भी स्पष्ट है। पहला, वित्त विभाग को तत्काल स्पष्ट करना चाहिए कि आउटसोर्स कर्मचारियों पर यह नियम लागू नहीं होता। आउटसोर्स सेवाएं सेवा प्रदाता कंपनियों के माध्यम से ली जाती हैं। दूसरा, सरकार को नई नीति लानी चाहिए कि जब तक नियमित भर्ती नहीं होती, तब तक आउटसोर्स सेवाएं जारी रहेंगी। तीसरा, आउटसोर्स कर्मचारियों को भी सामाजिक सुरक्षा मिले, उनका वेतन समय पर दिया जाए और उन्हें बिना कारण नौकरी से न निकाला जाए। मध्यप्रदेश सरकार यदि वास्तव में सरकारी कामकाज सुचारु रखना चाहती है तो उसे आउटसोर्स कर्मचारियों को समस्या नहीं, बल्कि व्यवस्था की मजबूरी और जरूरत का साथी मानना होगा। सेवानिवृत्ति के बाद भर्ती नहीं, कलेक्टर दर पर रोक, संविदा पर रोक और अब आउटसोर्स पर भी संकट, तो फिर दफ्तरों में काम कौन करेगा? फाइलें कौन चलाएगा और जनता के काम कौन करेगा? मुख्यमंत्री ने भ्रम दूर करने के निर्देश दिए हैं, यह अच्छी बात है। लेकिन अब लिखित में स्पष्ट आदेश जारी होना चाहिए, ताकि ढाई लाख कर्मचारियों का भविष्य सुरक्षित रहे और प्रदेश का कामकाज भी न रुके।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

जलवायु पर पंचायत फेल, दुनिया डूब रही और नेता कुर्सी तोड़ रहे

तुर्किये में सीओपी-31 का ड्रामा, दो हफ्ते की नौटंकी के बाद भी कागज कोरा

इजरायल हर साल एक तमाशा होता है। दुनिया भर के नेता हवाई जहाजों में उड़कर पांच सितारा होटलों में जमा होते हैं, बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, फोटो खिंचवाते हैं और जलवायु बचाने का नाटक करते हैं। इस बार यह तमाशा तुर्किये में हुआ। नाम था सीओपी-31। दो सप्ताह तक बातचीत चली, समय से दो दिन ज्यादा खिंची और अंत में हासिल क्या हुआ? कोई ठोस समझौता नहीं, कोई स्पष्ट रोडमैप नहीं और न ही जिम्मेदारी तय हुई। समझौते का मसौदा तक खारिज हो गया। यूरोपीय संघ ने इसे कचरा बताया, पनामा ने कहा कि यह संकट की गंभीरता के अनुरूप नहीं है और अध्यक्ष मुरात कुरुम हाथ मलते रह गए। असली खेल तेल का है। रूस और सऊदी अरब जैसे तेल उत्पादक देश नहीं चाहते कि जीवाश्म ईंधन का नाम तक लिया जाए। वे चाहते हैं कि कार्बन पकड़ने वाली मशीनों की कहानी सुनाकर दुनिया को भ्रमित किया जाता रहे। एक अरब टन कार्बन पकड़ने का लक्ष्य दे दो, ताकि तेल का कारोबार चलता रहे। यह जलवायु बचाना नहीं, बल्कि जलवायु के नाम पर कारोबार करना है। दूसरी तरफ यूरोपीय संघ, जो खुद को पर्यावरण का मसीहा बताता है, वह भी भाषण देने तक सीमित है। आर्थिक मदद देने की बारी आती है तो जेब में हाथ नहीं जाता। अमेरिका तो पहले ही इस प्रक्रिया से बाहर है।

भारत ने इस बार सही तेवर दिखाए। लाइक माइंडेड डेवलपिंग कंट्रीज (एलएमडीसी) की ओर से भारत ने साफ कहा कि विकासशील देशों की जरूरतें पूरी नहीं हो रही हैं। आर्थिक मदद नहीं देंगे तो उपदेश भी मत दीजिए। यह बात पूरी तरह जायज है। जिन देशों ने धरती के संसाधनों का दोहन किया और दो सौ साल तक औद्योगिक विकास के नाम पर वातावरण में कार्बन भरा, वे आज गरीब देशों से कहते हैं कि तेल मत जलाओ। यह कैसा न्याय है? भारत ने स्पष्ट किया कि आर्थिक सहायता के बिना कोई सार्थक बातचीत संभव नहीं है। उसका यह रुख जायज है। लेकिन सवाल भारत से भी है। क्या हम खुद ईमानदार हैं? हम दुनिया से पैसा मांगते हैं, मगर अपने देश में क्या कर रहे हैं? दिल्ली की हवा जहरीली है, गंगा में कचरा है, जंगल कट रहे हैं और हम हर सम्मेलन में खुद को पीड़ित बताकर अपनी जिम्मेदारियों से बचने की कोशिश करते हैं। हमें भी अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी। केवल दूसरों को दोष देने से काम नहीं चलेगा।

आयरलैंड के मंत्री डारा ओ'ब्रायन ने सही कहा कि यह बैठक अब तक की सबसे कठिन बैठकों में से एक थी। कठिन इसलिए थी, क्योंकि नियत ही साफ नहीं थी। सब अपनी कुर्सी बचाने में लगे थे, कोई भविष्य बचाने की चिंता नहीं कर रहा था। जिस मसौदे में तेल, कोयले और गैस पर निर्भरता खत्म करने की बात ही नहीं है, वह समझौता नहीं, बल्कि तेल कंपनियों का प्रचार पत्र है। इसे जलवायु सम्मेलन नहीं, बल्कि तेल सम्मेलन कहना ज्यादा उचित होगा। जिम्मेदार कौन है? वे सभी नेता, जो समझते हैं कि जलवायु संकट भविष्य की समस्या है। जबकि यह आज की सबसे बड़ी चुनौती है। हिमालय पिघल रहा है, केरल बाढ़ की मार झेल रहा है, राजस्थान तप रहा है, मगर नेता तुर्किये में वातानुकूलित कमरों में बैठकर कार्बन पकड़ने की तकनीक पर बहस कर रहे हैं। शर्म आनी चाहिए उन नेताओं को, जिन्होंने दो सप्ताह तक दुनिया का समय और संसाधन खर्च किए और अंत में हाथ खाली लौट आए।

अब सवाल है कि पेरिस समझौते का डेढ़ डिग्री तापमान वृद्धि सीमित रखने का लक्ष्य कैसे हासिल होगा? यह लक्ष्य अब कागजों तक सिमटता दिख रहा है। तापमान बढ़ेगा, समुद्र का जलस्तर चढ़ेगा और गांव उजड़ेंगे। इसका हिसाब कौन देगा? इस विफलता का सबसे बड़ा नुकसान गरीब देशों को होगा। उनके पास न पर्याप्त पैसा है और न तकनीक। वे बाढ़ में बहेंगे और अमीर देश अपनी सुरक्षा दीवारें ऊंची करते रहेंगे। समाधान एक ही है। झूठ बंद हो, तेल लॉबी के दबाव से मुक्त होकर फैसले हों और विकासशील देशों को पर्याप्त आर्थिक मदद मिले। विकसित देशों को अब भाषण नहीं, वास्तविक आर्थिक सहायता देनी होगी। भारत जैसे देशों को भी कोयले पर निर्भरता कम करने और न्यायसंगत ऊर्जा परिवर्तन की दिशा में ठोस कदम उठाने होंगे। अन्यथा हर साल सीओपी का यह नाटक चलता रहेगा, दुनिया जलती रहेगी और नेता तालियां बजाते रहेंगे।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

तेलंगाना में कांग्रेस की अंतर्कलह चरम पर

अपनों को पागल कुत्ता कहना पड़ा भारी

तेलंगाना में कांग्रेस सरकार को बने अभी तीन साल भी पूरे नहीं हुए हैं और मुख्यमंत्री रेवंत रेड्डी अपने ही घर में घिर गए हैं। बाहर विपक्ष का हमला तो था ही, अब अंदर से भी बगावत तेज हो गई है। पार्टी के विधायक, सांसद और मंत्री खुलकर बोल रहे हैं कि सरकार में भेदभाव हो रहा है, भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और मुख्यमंत्री सत्ता के अहंकार में हैं। हालात इतने बिगड़ गए हैं कि कांग्रेस को नया प्रदेश प्रभारी नियुक्त करना पड़ा है। लेकिन प्रभारी बदलने से घाव भरने वाले नहीं हैं, क्योंकि घाव जुबान ने दिए हैं।

ताजा विवाद मुनुगोड़े के तेजतर्रार विधायक कोमाटिरेड्डी राज गोपाल रेड्डी के बयान से शुरू हुआ। उन्होंने सीधा आरोप लगाया कि मुख्यमंत्री के करीबी नेताओं और मंत्रियों के विधानसभा क्षेत्रों में विकास कार्यों के लिए पूरा पैसा दिया जा रहा है, जबकि हम जैसे दूसरे विधायकों को बुनियादी कामों के लिए भी धन नहीं मिल रहा है। उन्होंने कहा कि सरकार जनता की अनदेखी कर रही है और भ्रष्टाचार में डूब रही है। सत्ता के अहंकार से बचना चाहिए। इस बयान के जवाब में मुख्यमंत्री ने असंतुष्ट नेताओं का नाम लिए बिना कह दिया कि कुछ नेताओं को पागल कुत्तों ने काट लिया है। बस फिर क्या था, यह एक वाक्य पूरे तेलंगाना की राजनीति में आग की तरह फैल गया।

राज गोपाल रेड्डी ने पलटवार करते हुए कहा कि संवैधानिक पद पर बैठे व्यक्ति को भाषा की गरिमा रखनी चाहिए। मुख्यमंत्री सड़क छाप भाषा नहीं बोल सकते। यह बयान बताता है कि कांग्रेस में अब बर्दाश्त की सीमा खत्म हो रही है। इससे पहले जडचेरला के विधायक जे. अनिरुद्ध रेड्डी ने बड़ा धमाका किया था। उन्होंने आरोप लगाया कि सरकारी अधिकारी ठेकेदारों से विकास कार्यों के बदले 10 से 20 प्रतिशत कमीशन मांग रहे हैं। चालीस करोड़ रुपये के बिल महीनों से लंबित हैं। यदि भुगतान नहीं हुआ तो वे अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल करेंगे। यह आरोप किसी विपक्षी नेता का नहीं, बल्कि सत्ताधारी दल के विधायक का है। इसका मतलब है कि अंदर कुछ बड़ा गड़बड़ है।



पार्टी की कलह सिर्फ दो विधायकों तक सीमित नहीं है। दिल्ली में इंडिया गठबंधन की रैली के दौरान वरिष्ठ मंत्री दामोदर राजनरसिम्हा और विधायक टी. लक्ष्मीकांत राव के बीच सार्वजनिक बहस हो गई। वामशी कृष्णा ने तो पार्टी में अनुशासनात्मक कार्रवाई के प्रस्ताव पर ही सवाल उठा दिए। यानी अब अनुशासन की बात भी बगावत की वजह बन रही है। सोचिए, जिस पार्टी में मंत्री और विधायक मंच पर ही लड़ पड़ें, उसकी अंदरूनी स्थिति क्या होगी?

असली सवाल है कि रेवंत रेड्डी ऐसा क्यों कर रहे हैं? राजनीति के जानकारों का मानना है कि रेवंत रेड्डी खुद को दिल्ली का नेता मानते हैं। उन्हें लगता है कि राहुल गांधी का हाथ उनके सिर पर है, इसलिए प्रदेश के नेताओं की नाराजगी से उन्हें फर्क नहीं पड़ता। लेकिन तेलंगाना की राजनीति दिल्ली से नहीं चलती, यहां जमीन पर काम करना पड़ता है। कोमाटिरेड्डी जैसे नेता अपने क्षेत्र में बड़ा जनाधार रखते हैं। उन्हें पागल कुत्ता कहने से कार्यकर्ता नाराज हो रहे हैं और बीआरएस तथा भाजपा को बैठे-बिठाए मुद्दा मिल रहा है। जनता की नजर में यह लड़ाई क्या है? जनता ने 2023 में कांग्रेस को उम्मीदों के साथ वोट दिया था। लोगों को लगा था कि केसीआर परिवार का शासन खत्म होगा और नया सवेरा आएगा। लेकिन अब लग रहा है कि चेहरा बदला है, सिस्टम वही है। विकास निधि में भेदभाव, कमीशनखोरी और लंबित बिलों की कहानी जनता रोज सुन रही है। इससे कांग्रेस की साख तेजी से गिर रही है। यदि समय रहते रेवंत रेड्डी ने अपनी भाषा नहीं बदली और विकास में समानता नहीं लाई तो यह असंतोष 2028 में बड़ा विस्फोट बन सकता है।

समाधान प्रदेश प्रभारी बदलने से नहीं, संवाद से निकलेगा। मुख्यमंत्री को अपने सभी विधायकों को एक मंच पर बुलाकर उनकी बात सुननी होगी। विकास निधि का बंटवारा पारदर्शी करना होगा और कमीशन के आरोपों की निष्पक्ष जांच करानी होगी। पागल कुत्तों वाला बयान वापस लेकर माफी मांगने से भी बड़ा दिल दिखेगा। राजनीति में अहंकार नहीं, विनम्रता चलती है। यदि रेवंत रेड्डी यह समझ गए तो सरकार बच सकती है, अन्यथा कांग्रेस का तेलंगाना मॉडल भी कर्नाटक की तरह अंतर्कलह की कहानी बनकर रह जाएगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)